IJAER/ Jan-Feb 2023/Volume-12/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

अमृतलाल नागर – नाच्यौ बहुत गोपाल और दलित नारी

डा. अनीता यादव
सह–आचार्य हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राजस्थान)

दलित साहित्य का प्रेरणा–स्त्रोत बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन है। बाबा साहब ने जाति विहीन, वर्ग विहीन, समाज के रूप में ऐसे समाज की कल्पना की जो समता, न्याय, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व पर आधारित हो, जिसमे छुआ–छूत, ऊँच–नीच के लिए कोई जगह न हो। वह जीवन भर इस प्रकार के समाज की स्थापना के लिए संघर्षरत रहे।

'दलित' का शब्दिक अर्थ है – कुचला हुआ। अतः दलित वर्ग का सामाजिक सन्दर्भों में अर्थ होगा वह जाति समुदाय जो अन्याय पूर्वक सवर्णों या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो। दलित शब्द व्यापक रूप में पीड़ित के अर्थ में आता है पर दलित वर्ग का प्रयोग हिन्दू समाज–व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत रूप में शूद्र माने जाने वाले वर्णों के लिए रूढ़ हो गया । दलित वर्ग में ये सभी जातियाँ सम्मिलित है जो जातिगत सोपान–क्रम में निम्नतम स्तर पर है और जिन्हें सदियों से दबाकर रखा गया है।

'दलित साहित्य' वह लेखन है जो वर्ण–व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है। वर्ण–व्यवस्था अर्थात् द्वेष, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्ध भावना। इसके विपरीत मूल्य अर्थात् प्रेम, बन्धुत्व, समता भ्रातृभाव पूर्ण शान्ति और समृद्धि। यथार्थ पर आधारित होने के कारण दलित साहित्य 'वाह' का नहीं 'आह' का साहित्य है। इसमें दलित जीवन का दंश दर्द और आह सर्वोपरि है क्योंकि यह समाज का सबसे बड़ा कटु और भयानक यथार्थ है।

डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा का केन्द्र मनुष्य था इसलिए उसकी सीमाओं के दायरे में पूरी मानवता समा जाती है। अब दलित साहित्य का दायरा कायम हो रहा है। वह मूल–साहित्य का रूप ले रहा है और संभवतः वह ही इक्कीसवीं सदी का मूल साहित्य होने वाला है। दार्शनिक एवं चिन्तक तुलसी राम के अनुसार ''आज की तारीख में डॉ अम्बेडकर की व्यापकता ही दलित साहित्य की मुख्य धारा है'' (1)। दलित साहित्य की वेदना 'मैं' की वेदना नहीं, वह बहिष्कृत समाज की वेदना है। इस बहिष्कृत समाज को बाकी समाज के समकक्ष लाए बिना मनुष्यता का तकाजा अधूरा रह जायेगा और मानवता अपूर्ण ही रहेगी। इसलिए दलित साहित्य मानवता के इस तकाजे के तहत उसे समकक्ष लाने के लिए प्रतिबद्ध है।

दलित स्त्री के सामाजिक सन्दर्भों पर विचार करते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, मानदण्डों के मध्य स्त्री की स्थिति निचले पायदान पर रही है एवं लगभग अपरिवर्तनीय। ''हिन्दू समाज उस बहुमंजिला इमारत की तरह है जिसमें प्रवेश के दरवाजे बन्द है तथा जो व्यक्ति जिस मंजिल पर जन्म लेता है उसे उसी में मरना होता है।'' डॉ. भीमराव अम्बेडकर के इस कथन को दलित स्त्री संदर्भ में विशेष तौर पर देखा जा सकता है।

स्त्री की स्थिति हिन्दू वर्ण–व्यवस्था में दलितों की स्थिति के समकक्ष है यद्यपि यह विषय लम्बी बहस की अपेक्षा रखता है कि उच्च वर्गीय सवर्ण स्त्री भी क्या दलित की भांति शोषित है और इसी श्रेणी में आती है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में जहाँ अधिकांशतः दलित और स्त्री दोनों ही प्रताड़ित है, दलित स्त्री का संघर्ष दोहरा, तिहरा हो जाता है। उसका संघर्ष एक और मनुवादी व्यवस्था से है तो दूसरी ओर पितृ सत्तात्मक व्यवस्था से भी।

प्रज्ञा लोखण्डे का विचार है कि 'हिन्दू वर्ग व्यवस्था के कारण दलित स्त्री एक ओर पुरुष सत्ता की तो दूसरी ओर जाति व्यवस्था की शिकार बनी । उस पर लिंग भेद और जाति भेद दोनों की वजह से अत्याचार हुए । इनके कारण दलित स्त्री ने जो कुछ सहा, उसकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति अभी आना बाकी है। दलित पुरुषों की स्थिति एवं मानसिकता

एक ओर दलित होने के नाते शोषित – प्रताड़ित की है तो पुरुष होने के नाते स्त्री से उसकी अपेक्षा पारम्परिक आदर्श भारतीय स्त्री की रही है।

दलित लेखन में भी पुरुष रचनाकारों द्वारा दलित स्त्री के वर्णन में स्त्री की छवि बहुत साफ नहीं है और उन पर आरोप लगे है कि वे स्त्री को एक स्वतंत्र व्यक्ति की हैसियत बहाल नहीं करते।

उपेक्षित और नाकारा जिन्दगी जीती दलित बस्ती की स्त्रियों जिनके पास न शिक्षा होती है न सम्पत्ति, हर दिन की रोटी के लिए जिन्हें निरंतर श्रम करना होता है। शोषण और उत्पीड़न के मध्य अपने लिए कोई मुकाम पा सकी अथवा नहीं, देखा जा सकता है। इंसान के रूप में जीने की कामना यदि उनमें जागती है तो उसके हश्र और संभावनाएँ उपन्यास विश्लेषित करता है। जहाँ तक नारी की त्रासदियों का प्रश्न है दलित नारी और तथाकथित सवर्ण नारियों की स्थिति में अन्तर रहा है। तथाकथित सवर्ण समाज में नारी का उत्पादन और आर्थिक गतिविधियों में योगदान नहीं होने से उसके जीवन में अधिक कुण्ठाएँ और अन्तर्विरोध रहे हैं। दहेज और वैधव्य का नारकीय जीवन इन्हीं के हिस्से में आया दलित नारी के जीवन में नहीं तथाकथित सवर्ण समाज में विधवा नारी का दैहिक मानसिक और यौन शोषण हुआ है वह किसी रौरव नर्क से कम नहीं है।

परिवार की आर्थिक गतिविधियों में सहभागी होने के बावजूद भी दलित नारी का स्थान परिवार तथा समाज में पुरुष से निम्न रहा। धन धरती और सत्ता से वंचित रहने के कारण इस वर्ग की आर्थिक और सामाजिक स्थिति अत्यन्त दुर्बल रही । इस कारण इस वर्ग की स्त्रियों का यौन शोषण इतर वर्ग के लोगों द्वारा आसान रहा। एक ने इसे नियति मानकर स्वीकार किया तो दूसरे ने भाग्य मानकर।

दलित नारी की स्थिति इस मनुवादी व्यवस्था में तीसरे दर्जे की हो गयी। दलित समाज में नारी की स्थिति और भी दयनीय रही चूंकि उस पर दलित पुरूषों का नहीं सवर्ण पुरुषों का अधिकार माना जाता था। वे अपने धन, बल एवं ऐश्वर्य के बल पर उसे अपनी अंकशायिनी बना लेता था। उस समय न उनके छुआछूत आड़े आती है, न धर्म, और न जाति ।

इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि एक और तथाकथित सवर्ण समाज की स्त्रियों में पर पुरुष की छाया पड़ना, उसका ध्यान करना भी पाप और धर्म विरोधी समझा जाता था वहाँ दलित नारियों में पर पुरुष को अपना सर्वस्व लुटा देने पर मजबूर होना पड़ता था। इस घृणित स्थिति को अपनी नियति मानने के पीछे दलित वर्ग की दयनीय आर्थिक स्थिति एवं सामाजिक विवशताएं ही रही।

इस स्थिति ने दलित नारी के सामाजिक अस्तित्व को बहुत बौना और गौण बना दिया – इतना बौना कि साहित्यकार की दृष्टि और कलम उसकी ओर उन्मुख ही नहीं हो पायी । साहित्यकारों की संकुचित दृष्टि के कारण दलित नारी को ठीक से न कभी नायिका का स्थान मिल पाया न प्रेमिका का।

हिन्दी के आम साहित्यकार की सोच परिवर्तनवादी न होकर पुरातनपंथ रही है। हिन्दी के अधिकांश लेखक और साहित्यकार तथाकथित उच्चवर्ण के रहे तथा वे अपने वर्ग और वर्ण के हितों से परे नहीं जा सके । भारतीय मानसिकता नारी को सीता और सावित्री के रूप में देखने चाहने की रही । यह मानसिकता धीरे–धीरे यथार्थ से टकराकर टूटी किन्तु दलित नारी इस दृष्टि से अभागी रही । दलित नारी का हिन्दी उपन्यासों में जो चित्रण हुआ है अधिकांश में वह कथावस्तु को आगे बढ़ाने वाला अथवा स्थितियों का इतिवृत्त प्रस्तुत करने वाला रहा है। वह प्रायः नियति के सामने पराजय स्वीकार करती हुई चित्रित की गयी है इतरवर्ण या इतर पुरुष की भोग्या हो या देह व्यापार करती हो, उसमें परिवर्तन या क्रान्ति के प्रति आग्रह और वर्तमान के प्रति आक्रोश के दर्शन कम होते हैं। कुछ गिने चुने उपन्यासों में दलित नारी का यह रूप देखने को मिला। इसी क्रम में मैंने अमृत लाल नागर के उपन्यास ''नाच्यों बहुत गोपाल'' को लिया है। ''नाच्यौ बहुत गोपाल'' यशस्वी साहित्यकार अमृत लाल नागर का बहुचर्चित उपन्यास है। इसमें 'मेहतर' कहे जाने वाले अछूतों में भी अछूत, अभागे अंत्यजों के चारों ओर कथा का ताना–बाना बुना गया है और उनके अन्तरंग जीवन की करूणामयी, रसार्द्र और हृदयग्राही झाँकी प्रस्तुत की गयी है। मेहतर जाति किन सामाजिक परिस्थितियों में अस्तित्व में आई, उसकी धार्मिक–सांस्कृतिक मान्यताएँ क्या है. आदि प्रश्नों के उत्तर तो दिए ही गए हैं। साथ ही वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्द्ध की राष्ट्रीय और सामाजिक हलचलों का दिग्दर्शन भी जीवंतता के साथ कराया गया है।

अमृतलाल नागर के ''नाच्यौ बहुत गोपाल'' उपन्यास में एक बाहमणी के हरिजन बनने की क्रान्तिकारी घटना का वर्णन है साथ ही मेहतर समाज के रीति रिवाजों, आस्थाओं, आकांक्षाओं, प्रथाओं, ऊँची जाति के बारे में प्रतिक्रियाओं का इतना सजीव और ईमानदार वर्णन शायद पहली बार पढ़ने में आया है। इसके अतिरिक्त उपन्यास का शिल्प, जिसमें डायरी, इन्टरव्यू, आँखो देखी घटनाएँ आदि जिस ढंग से लायी गयी हैं, उनमें एक तरह का ताजापन और विश्वसनीयता है। उपन्यास का उद्देश्य भारतीय समाज में सामंती दमन के निकृष्टतम रूपों से साक्षात्कार कराना और उनके प्रति हमारे मन में नफरत और विरोध का तीखा बोध पैदा करना है। अपने इस संवेदनात्मक उद्देश्य की पूर्ति के लिए, उन्होंने मैला धोने और ढोने वाले भंगी समुदाय के जीवन यथार्थ का मार्मिक चित्रण किया है।

उपन्यास की नायिका निर्गुन जन्म से ब्राह्मण थी किन्तु परिस्थितिवश भंगिन बन गयी। एक अनैतिक माहौल में जबरन पालित पोषित होने के कारण अबोध उम्र में निर्गुन के चरित्र में एक तरह की भयावहता आ गयी थी। फिर एक बूढ़े के साथ विवाह हो जाने के कारण निर्गुण के व्यक्तित्व में बसी हुई कुंठाऐं मौका पाकर क्रान्ति का रास्ता तलाश गयी। बेमेल और विकृत काम प्रवृत्तियाँ मूलतः सामन्तवादी और पूंजीवादी विकृतियों का एक स्वाभाविक फल होती है। इसी बेमेल सम्बन्धों के खिलाफ विरोध करके निर्गुन, मोहना जैसे जवान मेहतर की ओर आकर्षित होती है। उसके साथ भाग जाती है। आखिर तक मेहतरानी बनकर उसके साथ प्रतिव्रता धर्म निभाती है। काफी शारीरिक, मानसिक यंत्रणाऐं सहने और थककर हारकर टूट जाने के बाद मेहतरानी बनती है। निर्गुन मोहना के साथ एक दाम्पत्य जीवन का आनन्द नहीं ले रही थी, उसके मन में मोहना के लिए एक भंगी के लड़के के प्रति विशेष आस्था दिखायी देती है क्योंकि कई जगह भंगी जाति के द्वारा बेहद अपमानित और प्रताड़ित होने के बावजूद भी उसका प्यार मोहना में अविचल रहा है। इस संदर्भ में उसकी नैतिकता लक्षणीय है वह कहती है– औरत अगर चाहे तो वैशिया की चाल चल के भी अपना सत अडिग, अटूट बनाए रख सकती है। मेरे सामने छप्पन भोग है जो चाहूँ सो चखूँ मगर एक बात ध्यान में रखियेगा कि जब नीयत ठीक होती है तो बड़ी से बड़ी लालसा भी इंसान को डिगा नहीं पाती । जब–जब कमजोरियाँ जागी तब–तब एक सूरत एक मूरत मेरे मन में बसी मुझे अपने में रमा लेती थी। फिर दूसरे पर ध्यान नहीं जाता (2)।

सारी कहानी एक ब्राहमणी के मेहत्तर बनने के रूपान्तरण की मानसिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया को परत दर परत खोदती रही है। हाँ, उसने अप्रत्यक्ष रूप से स्त्री मुक्ति समस्या के साथ तथाकथित ऊंची जाति के पाखंड और उसकी सामाजिक असारता को बड़ी खूबी से चित्रित किया है। ब्राहमण कुल की नारी के मुख से अपनी ही जाति के दोगलेपन को दिखाकर नागर जी ने एक तरह से घटनाओं की प्रमाणिक गवाही दी है।

बसन्ती लाल के कहने पर ये तुमने क्या किया निर्गुन एक मेहतर के साथ– इस पर निर्गुन का सटीक उत्तर है ''पचासों ब्राहमण, ठाकुर, बनिए, खत्री, कायस्थ और मुसलमान जब इन मेहतरानियों के साथ बदकारियाँ करते हैं तब आपको बुरा नहीं लगता (3)।

अन्त में मोहना डाकू बन जाता है और निर्गुनिया आत्महत्या कर लेती है। भंगियों के समाज में रहकर तथाकथित प्रतिष्ठित जाति वालों की विकृतियों का निर्गुनिया भंडा फोड़ती रही और आजीवन संघर्ष मोल लेकर मेहतर समाज को शिक्षित और स्वावलम्बी बनाने की कोशिश करती रही। अपने इस संघर्ष में वह टूटी नहीं। नागर जी ने निर्गुन को खड़ा करके मानो संस्कारगत भारतीय मानस को जगह–जगह आघात दिए हैं, उसे चौंकाया है। एक तरह से सांमती जीवन मूल्यों को कहीं न कहीं झंझोड़ने का प्रयास किया है।

आर्य समाज के अन्तर्विरोधों, गांधी वादी मानवता की सफलता–विफलता का लेखा जोखा उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत करके शायद इस सत्य की ओर इशारा करना चाहा है कि मात्र वैचारिक सुधारवाद से जन की समस्या हल नहीं हो सकती । वास्तव में जाति प्रथा एक ऐसी स्थिति है जिसकी संश्लिष्टता, विसंगति को सीधे ढंग से छेद देना संभव नहीं है। हरिजनों के उत्थान के लिए जो आन्दोलन चलाये गये हैं, उसके भीतर भी वर्ग भेद, छुआछूत नये रूप नया वेष बदलकर विद्यमान है। इन अन्तविरोधों का चित्रण कर नागर जी ने उन सुधारवादी लोगों को आगाह किया है कि इस देश में वर्ग के आधार पर एकता की धारणा इतना सरल नहीं है।

वस्तुत उपन्यास की मूल समस्या सांस्कृतिक तथा सामाजिक शोषण से मुक्ति की समस्या है। एक नारी और एक भंगी यह दोनों ही मुक्त होना चाहते हैं। निर्गुनिया का कथन – ''बाबू जी मैं पक्ष लेकर बात नहीं करती, पर यह सच है

कि दुनिया के दूर–दूर तक देशों में औरत से बढ़कर कोई ज्यादे गुलाम नहीं है। सब जगह औरत की एक जैसी मिट्टी पलीत है'' (4)।

.''दुनिया में बड़े–बड़े गिरे लोगों की तकदीरें पलट गई। अफरीका के लोग जो कल तक गोरों के गुलाम थे, अब खुद मुखत्यार हो गये। दुनिया में इत्ता–इत्ता इनक्लाब – जिन्दाबाद और आजादी के नारे लग गये पर हम मेहतरों को किसी ने आज तक आजाद नहीं किया बाबू जी'' (5)।

मैंने तो नसीब की मार से मेहतरानी बनकर ये सीखा बाबू जी कि दुनिया में दो पुराने से पुराने गुलाम है ''एक मंगी और दूसरी औरत जब तक ये गुलाम है, आपकी आजादी रूपये में पूरे सौ के सौ नये पैसे भर झूठी है। अंत में वह आत्म विश्वास भरे स्वर में कहती है कि मेहतरों की समस्याएं हल होगी और जमाना बदलकर रहेगा'' (6)।

समाचार पत्रों में रोज ये लिखा जाता है कि हरिजन उद्वार के लिए ये किया गया और वो किया जा रहा है, पर असली काम क्यों नहीं किया जाता ? '' पाखानों का फलश– सिस्टम लागू कर दें इंसान को इंसान का मैला ढोने के काम से मुक्त करें (7)।

ब्राह्मणी संस्कारों में पली निर्गुनिया और भंगी मोहना इनके बीच तो नितांत भिन्न और विरोधी संस्कारों का मेल है। निर्गुन इस दंभ को नहीं मानती कि उसे उच्चता के मंच से निम्नों के सुधार की बात करनी है। वरन् भंगियों के संग, भंगी संस्कारों का भीतर से अनुभव करके उन्हीं में से एक–एक स्तर पर उठकर अपनी संतानों और जाति के उत्थान का ईमानदार प्रयास करती है।

यह सत्य है कि भारतीय समाज में दबावों और पाखण्डों की सत्ता जितनी शक्तिशाली है उस प्रमाण में मुक्ति और विद्रोह का इतिहास बहुत ही नगण्य है। नाच्यों बहुत गोपाल में उपन्यासकार निर्गुनिया में मुक्ति के साहस की उद्भावना करते हैं। साहस केवल बेमेल और घिनौनी कामकुंठाओं के पिंजरे से बाहर निकलना ही उनका उद्देश्य नहीं बल्कि मोहना जैसे भंगी लड़के के साथ विवाह करना इस मुक्ति का महत्त्वपूर्ण आयाम है।

यहाँ एक युवती की स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक कामेच्छाओं की ही पूर्ति नहीं, बल्कि उच्चवर्गीय समाजों की दोहरी नीतियों और भीतर के सड़े–गले मूल्य बोधों के खिलाफ निम्न जाति के अकृत्रिम, स्वाभाविक और वर्जना रहित मूल्य चेतना का संघर्ष है। प्रस्तुत उपन्यास अपनी चमत्कार पूर्ण शैली के बावजूद वर्गवाद के मोटे तौर और

स्थूल पाखण्डों का लेखा जोखा प्रस्तुत करके नहीं रुकता । इसमें उन अवरोधों का प्रछन्न क्यों न हो, संकेत है जो जनोन्मुखी समाज रचना बनाने में बार–बार बाधा डालते हैं। इन अवरोधों का निराकरण उतने ही साहस के साथ और जोखिम उठाकर करना पड़ता है। निर्गुनिया ने यह जोखिम उठायी है।

अमृत लाल नागर ने ''नाच्यौ बहुत गोपाल'' में निर्गुन के बहाने अपने अंदर की स्त्री और उसमें दलित की कहानी का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है। साथ ही उसके चेतन्य रूप को भी अभिव्यक्ति दी है।

सन्दर्भ सूची

1 राष्ट्रीय सहारा में दलित साहित्य की अवधारणा।
2 नाच्यों बहुत गोपाल – पृष्ठ संख्या 322, 328
3 नाच्यों बहुत गोपाल –पृष्ठ संख्या 151
4 नाच्यों बहुत गोपाल –पृष्ठ संख्या 229
5 नाच्यों बहुत गोपाल –पृष्ठ संख्या 311
6 नाच्यों बहुत गोपाल –पृष्ठ संख्या 343
7 नाच्यों बहुत गोपाल –पृष्ठ संख्या 343